वैदिक व्याख्यान माला — ३३ वाँ व्याख्यान

वेदमें

नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण-व्यवस्था

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मंडल, साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

स्वाध्यायमण्डल, पारडी (सूरत)

मूल्य छः आने

ॐ

वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण-व्यवस्था

नगरोंका संरक्षण उत्तम रीतिसे हुआ तो नागरिकोंको आरामसे रहनेका आनन्द प्राप्त हो सकता है। पर यदि नगरोंपर शत्रुके सतत आक्रमण होते रहे, तो नागरिकोंको रातदिन दुःखके सिवाय दूसरा कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। इस कारण वेदमें नागरिक संरक्षणके विषयमें कौनसे आदेश हैं और उनको पालन करनेसे नगरोंका संरक्षण किस तरह हो सकता है, इसका विचार इस स्थानपर करना है।।

नगरोंका स्वरूप

नगरोंका स्वरूप उनके नामोंसे ही प्रकट हो सकता है।

१ ग्रामः– आजकल जिसको 'गांव' कहते हैं, वही यह ग्राम है। अनेक ग्रामस्थजनोंका जहां निवास होता है, पर जिसको नगर या पुर नहीं कह सकते, जो आकारमें छोटा है, जिसमें साधारण जनता बसती है, वह ग्राम (गांव) है।

२ नगरं, नगरी- (नग-रं, नग-री) (नग) पर्वतका नाम है, पर्वतके आश्रयसे जो बसी है, पर्वत जहां शोभते हैं, पर्वतोंसे जो शोभती है, पर्वतोंके समान बडे बडे प्रासाद जहां हैं, वह नगरी है। ग्रामसे यह कई गुणा बडी होती है। इस नगरीमें धनिकोंके बडे बडे प्रासाद रहते हैं।

३ पूः, पुरं, पुरी- (पिपर्ति, पॄ-पालन पूरणयोः। पूर्यते, पुर्, अग्रगमने, पुर् आप्यायने, पूरयति)- जो सब सुखसाधनोंसे परिपूर्ण रहती है, वह पुरी कहलाती हैं। 'पूः, पुरं, पुरी' एक ही अर्थके पद हैं। जिसमें मानवी सुखसाधनोंकी भरपूर पूर्णता है, किसी तरह न्यूनता नहीं वह पुरी है।

पुरी सबसे बडी, नगरी उससे जरा छोटी और ग्राम सबसे छोटा होता है। 'पट्टनं, पत्तनं' आदि नगर बीचकी अवस्थाके हैं। 'क्षेत्र' पद उस नगरका वाचक है, कि जो धार्मिक पवित्रताके लिये प्रसिद्ध है, भारतमें काशी, प्रयाग, नासिक आदि क्षेत्र हैं; पूना, सातारा, सूरत ये नगर हैं; बंबई, कलकत्ता, दिल्ली ये पुरीयां हैं। इस तरह पाठक जान सकते हैं।

अब यह देखना है कि, इनकी संरक्षणव्यवस्था किस तरह की जाती थी और वेद मंत्रोंमें इनके संरक्षण करनेके संबंधमें कैसे आदेश दिये हैं। बडी बडी पुरियोंके संरक्षण करनेके विषयमें हम प्रथम देखेंगे कि, क्या आदेश वेद मंत्रोंमें दिये हैं। उस वर्णनसे हम जान सकेंगे कि, छोटी नगरीयों और ग्रामोंके विषयमें क्या कहा है और उनका संरक्षण कैसा होना चाहिये, या करना चाहिये।

अष्टाचक्रा नवद्वारा अयोध्या

अयोध्या पुरीका वर्णन वेदमें किया है, वह प्रथम यहां देखने योग्य है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ ३१
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षं आत्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥ ३२॥
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशाऽपराजिताम्॥ ३३॥
अथर्व. १०।२

वस्तुतः इन मंत्रोंमें आध्यत्मका वर्णन है, अर्थात् अपने शरीरमें रहनेवाली शक्तियोंका सुन्दर वर्णन है, पर वह वर्णन बडी विशाल पुरीके वर्णनके समान किया है अर्थात् इससे अध्यात्मदृष्टिसे आत्माके सुन्दर निवासस्थानका भी वर्णन हो रहा है और शत्रुद्वारा पराभूत न होनेवाली पुरीका भी वर्णन इन्ही पदोंसे होता है। हमें इस समय अध्यात्मके

वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमें देखना है कि, वेदमें नगरोंकी सुरक्षाके लिये कौनसे आदेश दिये हैं। इसलिये हम यहीं नागरिक सुरक्षाका विषय ही इन मंत्रोंमें देखते हैं। इस दृष्टिसे इन मंत्रोंमें बहुत उपयोगी आदेश मिलते हैं। देखिये नगरका संरक्षण करनेके लिये क्या करना चाहिये—

१ अ-योध्या— शत्रुके द्वारा (अ+योध्या) युद्ध करके कभी पराजित न होनेवाली। शत्रुके आक्रमणोंका जिस नगरीके कीलोंपर कुछ भी परिणाम नहीं हो सकता। ऐसा अभेद्य कीला नगरके बाहर होना चाहिये।

२ नव-द्वारा— जिस नगरीके कीलेको नौ द्वार हैं। कीला जिस पुरीके चारों ओर होता है, उस कीलेकी दीवारमें बडे द्वार होते हैं। नगरके मनुष्य या प्राणी, तथा नगरके बाहरके प्राणी या मनुष्य इन ही बडे द्वारोंसे अन्दर या बाहर जा सकते हैं। हाथी, बडी गाडियां, हाथीकी या ऊंटकी गाडियां इसी द्वारोंसे अन्दर या बाहर जा सकती हैं, ऐसे ये द्वार बडे विशाल होते हैं। यहां इस अ-योध्या नगरीको नौ द्वार हैं ऐसा वर्णन है। पर कई नगरियोंको कम या कईयोंको अधिक भी द्वार हो सकते हैं। उस पुरीका व्यवहार अन्दर बाहर जितना अधिक या न्यून होगा, उसपर इन द्वारोंकी संख्या न्यूनाधिक हो सकती है। अथवा जहां शत्रुके आक्रमणकी संभावना अधिक होगी वहां द्वार कम होंगे और जहां वैसी संभावना नहीं होगी, वहां द्वार अधिक भी हों सकेंगे।

पुरं एकादश द्वारं अजस्य अवक्रचेतसः।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते॥

कठ० उ० ५।१

यहां ग्यारह द्वारोंकी पुरीका वर्णन है। यह पुरी (अ-वक्र-चेतसः अजस्य) जिनका चित्त तेढा या कुटिल नहीं है, ऐसे प्रगतिशील सरल स्वभाववालोंकी यह पुरी है। यहां (अनुष्ठाय न शोचति) पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवालोंको शोक करनेका कारण नहीं रहता, क्योंकि उनके योग-क्षेमकी उत्तम व्यवस्था यहां होती है। जो (विमुक्तः विमुच्यते) बंधनसे परे रहता है, वह यहां आनन्दमें विमुक्त जैसा रहता है। बन्धन रहित अवस्थामें रहता है।

यहां ग्यारह द्वारोंवाली पुरीका वर्णन है। उसी अयोध्या पुरीका यह वर्णन है। इन नौ द्वारोंमें दो और गुप्त द्वार अधिक गिनाये हैं। ये द्वार विशेष कारणसे ही खुलते हैं। दो आंख, दो कान, दो नासिका द्वार, एक मुख, एक मूत्र द्वार और एक मलद्वार ये नौ द्वार सबोंके लिये खुले हैं। एक नाभी और एक ब्रह्मरन्ध्र जो मस्तकमें है, जो खास विशेष उन्नत श्रेष्ठ मानवोंके लिये ही खोला जाता है। ऐसे ये ११ द्वार इस पुरीके कीलेमें हैं।

जिन्होंने कीलेके द्वार देखें होंगे, उनको पता है कि ये द्वार पास नहीं होते। पुरीके आकारके अनुसार मील दो मीलके अन्तरपर होते हैं। अर्थात् यह ब्रह्मपुरी, ब्रह्मनगरी अथवा अयोध्यानगरी दस बीस मील क्षेत्रको व्यापनेवाली बडी विशाल है। यहां नगरमें हरएक नागरिक उसके धंदेके अनुसार ही रहता है। ऐसे चार पांच विभाग इसमें रहते हैं और ऐसे गुणवान लोग नियत स्थानोंमें रहते हैं। इसलिये समान शीलोंका एक स्थान होनेसे उनको मिलजुलकर रहनेकी सुविधा रहती है।

नगरके मध्यमें यज्ञशाला या मंदिर रहता है। इसके चारों ओर विद्वान् लोग रहते हैं। उसके चारों ओर धन-धान्यका व्यापार करनेवाले, उसके चारों ओर क्षत्रिय और उसके चारों ओर कर्मचारी और सबसे बाहर जो विशेष कुछ कर नहीं सकते ऐसे लोग रहते हैं। मार्गोंकी और द्वारोंकी व्यवस्था शहरके व्यवहारपर अवलंबित रहती है। शहरके चारों ओर कीला रहता है। बीचमें भी तीन या पांच या सात कीलेकी दिवारें होतीं हैं। नगरके बाहरकी दिवारके बाहर जलकी परिखा रहती है। इसमें जल भरा रहता है जिससे एकदम शत्रु पुरीपर आक्रमण नहीं कर सकता। किसी किसी स्थानपर लकडियां रखकर अग्नि भी जला देते हैं, जिससे अग्निमेंसे शत्रु नहीं आक्रमण कर सकता।

पुरीके छोटी या विशाल होनेके अनुसार कीलेके द्वार संख्यामें न्यून वा अधिक हो सकते हैं और प्रत्येक द्वारपर रक्षक योग्य संख्यामें रहते हैं। तथा वे रक्षक शस्त्र-अस्त्र संपन्न रहते हैं। इस तरह नगरका उत्तम संरक्षण होता रहता है। इन शस्त्रास्त्रोंका विचार हम इस लेखके अन्तमें करेंगे। वहीं पाठक इसको देखें।

३ अष्टाचक्रा— कीलेके दिवारोंपर आठ चक्र लगे रहते हैं। इन चक्रोंमेंसे शत्रुपर गोलियोंकी तथा अन्यान्य मारक सामग्रीकी वृष्टि की जाती है। इससे दूरसे ही शत्रु-

ओंका नाश होता है और पुरीका संरक्षण होता है। ये चक्र आठ ही रहते हैं ऐसी बात नहीं है। छोटे बडे कीलेके अनुसार ये न्यून वा अधिक भी होते हैं। जिस शरीररूपी कीलेका यहां वर्णन किया है, इस कीलेमें ये चक्र ३३ हैं। इनमें आठ मुख्य हैं। बाकीके थोडी सामग्रीवाले हैं। इस तरह आवश्यकताके अनुसार ये न्यून वा अधिक भी होते हैं और कई चक्रवाले बुरुजोंपर युद्धसामग्री अधिक भी रखी जाती है। इस तरह द्वारोंपर रक्षक होते हैं, बुरुजोंपर रक्षक और संरक्षक होते हैं और युद्धसामग्री भी इन स्थानोंपर पर्याप्त रहती है।

४ यशसा संपरीवृता— यह नगरी यशसे घीरी हुई है। यहां 'यश' का अर्थ 'यश या कीर्ति' अथवा 'जल' भी है। यह नगरीका कीला जलसे भरी परिखासे युक्त रहता है। अर्थात् कीलेकी दीवारके साथ चारों ओर परीखा रहती है और उस परिखामें पानी भरा रहता है। इससे शत्रुकी सेना एकदम कीलेकी दिवारपर चढ नहीं सकती। क्योंकि शत्रुसेना समीप आते ही कीलेकी दिवारपर जो बुरुज रहते हैं वहांके चक्रोंद्वारा गोलियोंकी वृष्टि शुरू होती है। इस कारण शत्रुके सैनिक कीलेकी दिवारपर चढ नहीं सकते। इस तरह पुरी और नगरियोंका उत्तम संरक्षणका प्रबंध वेदके आदेशके अनुसार किया जाता था।

५ अ-पराजिता— संरक्षणका इतना उत्तम प्रबंध होनेसे इस पुरी या नगरीको 'अ-पराजिता' कहा है। 'अ-योध्या' भी इसी अर्थका नाम है। इतना संरक्षणका प्रबंध होनेसे इस नगरीपर शत्रु आक्रमण भी नहीं कर सकते, और आक्रमण किसी शत्रुने किया भी तो उसका पराभव ही होता है। यह भाव 'अ-योध्या' और 'अ-पराजिता' ये दो पद बता रहे हैं। अपनी नगरियोंका और अपने देशका ऐसा संरक्षण करना चाहिये।

कई कहेंगे कि अब तो विमानके हमले ऊपरसे होते हैं। इसलिये इस संरक्षणका आज कोई उपयोग नहीं है। हम कहते हैं, कि वेदमें भी विमानकी पंक्तियां आकाशमें उडती थीं ऐसा वर्णन है। अतः 'भूविवर' का उपयोग भी वेदमें लिखा है। तथा विमान होनेसे अन्यान्य शस्त्र अस्त्र हट गये हैं ऐसी बात नहीं हैं। साधारण शस्त्र भी चाहिये और विमानोंका आक्रमण हुआ, तो उसका बंदोबस्त भूविवरमें प्रविष्ट होकर अथवा अपने विमानोंद्वारा शत्रुको परास्त करके उसका पराजय करना आदि अनेक उपाय किये जा सकते हैं। वे सब करना और अपना संरक्षण करना, यह मुख्य बात यहां देखनी और ध्यानमें रखनी चाहिये। अपने संरक्षण करनेमें किसी तरह उदासीनता नहीं होना चाहिये।

६ हिरण्ययी प्रभ्राजमाना पुरी— सुवर्णमयी तेजस्वी चमकनेवाली पुरी यह हो। घरोंपर सुवर्णकी नकशी हो, मंदिरोंके शिखरोंपर सोनेके पत्रे लगे हों, ऐसी अपनी नगरी चमकनेवाली हो। बाहरसे कोई आकर देखे तो वह इसके दृश्यसे पूर्णतया प्रभावित हो। संरक्षणकी तैयारी देखकर भी विदेशी प्रवासी प्रभावित हों और सुवर्णमयी नगरीको देखकर भी वे प्रभावित हों। जहां उत्तम संरक्षण है, वहां ऐसी ही संपत्ति रह सकती है। संरक्षण न रहा तो डाकू प्रबल होंगे और धन ऐश्वर्यकी लूट करेंगे। इसलिये प्रजाके धन तथा ऐश्वर्यका उत्तम संरक्षण राज्यप्रबंध द्वारा होना चाहिये।

७ तस्यां हिरण्ययः कोशः— उस उत्तम सुरक्षित पुरीमें सुवर्ण रत्नोंका बडा कोश रखा रहता है। यह राष्ट्रका खजाना है। ऐसी संरक्षणकी जहां सुव्यवस्था होगी वहां ही 'राष्ट्रीय धनकोश' सुरक्षित रह सकता है।

८ त्र्यरः त्रिप्रतिष्ठितः हिरण्ययः कोशः— तीन आरोंसे व्यवस्थित और तीन संरक्षणोंसे सुसंस्थापित वह राष्ट्रीय धनकोश अत्यंत सुरक्षित रखा जाता है। जैसे चक्रके आरे चारों ओरसे चक्रकी नाभिमें सुरक्षित रखे जाते हैं, वैसा ही यह राष्ट्रीय धनकोश तीन बाजूओंसे सुरक्षित रखा जाता है और स्थान भी तीन दिवारोंसे सुप्रतिष्ठित रहता है। राष्ट्रीय धनकोश अत्यंत सुरक्षित रखनेका यहां आदेश है, जो नागरिक सुरक्षाका प्रबंध करनेवालोंको सतत ध्यानमें रखना चाहिये।

९ स्वर्गो ज्योतिषावृतः कोशः— वह राष्ट्रीय धनकोशका स्थान तेजसे घिरा (ज्योतिषा-आवृतः) रहता है। दिनमें भी उस कोशमें प्रकाश रहता है और रात्रीके समयमें भी उत्तम प्रकाश वहां रहता है, कोशके स्थानमें अंधेरा न होना यह भी एक सुरक्षाका उत्तम प्रबंध ही है। तथा वह 'स्वर्गः सु-वर्गः' उत्तम वर्गके लोगोंका वह

*

रहनेका सुरक्षित स्थान रहता है। हीन लोगोंके रहनेका स्थान उस ओर नहीं रहता। जिस तरह स्वर्गमें- सु-वर्गके स्थानमें हीन कर्म करनेवाले नहीं जा सकते, उसी तरह जिस स्थानमें राष्ट्रीय धनकोश रखा जाता है, वहां हीन प्रवृत्तिके लोग पहुंच ही नहीं सकते। ऐसे स्थानमें राष्ट्रीय धनकोश उत्तम सुरक्षित रीतिसे रखा जाता है।

१० तस्मिन् आत्मन्वत् यक्षं— वहां उस राष्ट्रीय धनकोशकी सुरक्षाके लिये आत्मिक बलसे बलवान् पूज्य यक्ष रहता है। जो खास करके उस कोशकी सुरक्षा करता है। यह इसी कार्यके लिये विशेष सुरक्षाका अधिकारी है। यही उसका कार्य है।

११ ब्रह्मा हिरण्ययीं पुरं विवेश— इस तरहकी अति सुरक्षित सुवर्णमयी पुरीमें ब्रह्मा-विश्व सम्राट्-निरीक्षणके लिये प्रवेश करता है और सुरक्षा वहां कैसी है यह देखता है।

वास्तविक यह वर्णन अध्यात्मदृष्टिसे सचमुच अपने शरीरका ही है। आत्मा हृदयमें रहता है, यह शरीर देवोंकी बडी नगरी है, उसमें हृदय स्थान है। वहां आत्मा है। इत्यादि वर्णन करनेके लिये ये मंत्र हैं। परंतु इन मंत्रोंमें इस ढंगसे वर्णन किया है कि इस वर्णनसे उत्तम सुरक्षित नगरीका भी बोध हो जाय। यही वर्णन हमने यहांतक किया है और देखा कि नगरोंकी सुरक्षाका प्रबंध करनेके वेदके आदेश क्या हैं।

लोहेके कीले

लोहेके कीलोंका भी वर्णन वेदमें है। देखिये अनेक आयसी पुरोंका वर्णन इस मंत्रमें हैं—

अग्ने गृणन्तं अंहसः उरुष्य
ऊर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः। ऋ. १।५८।८

'हे (ऊर्जो नपात् अग्ने) बलको न गिरानेवाले अग्ने! अग्रणे! तू (आयसीभिः पूर्भिः) लोहेके कीलोंसे (अंहसः उरुष्य) पापी लोगोंके आक्रमणसे हमें बचाओ।' तथा—

शतं मा पुर आयसीररक्षन्। ऋ. ४।२७।१

'सौ लोहेके कीलोंने मेरा संरक्षण किया है।' तथा और देखिये। वेद आज्ञा देता है कि लोहेके कीले नगरोंके रक्षणार्थ नगरोंके बाहर बनाओ—

पुरः कृणुध्वं आयसीः अधृष्टाः।
ऋ. १०।१०१।८, अथर्व. १९।५८।४

'लोहेके कीलोंवाले नगर ऐसे बनाओ कि जिनपर शत्रुका (अ-धृष्टा) आक्रमण होना सर्वथा असंभव है।' सुरक्षाके लिये लोहेके कीले बनाओ और उनके अन्दर रहो। जिससे तुम सुरक्षित रहकर अपनी अनेक प्रकारकी उन्नति कर सकोगे। तथा और देखिये—

शतं पूर्भिः आयसीभिः नि पाहि। ऋ. ७।३।७

'हमारा संरक्षण सैंकडों लोहेके कीलोंसे कर' अर्थात् हमारे नगरोंके बाहर सैंकडों लोहेके कीले हों, जो इस प्रान्तका संरक्षण करते रहें।' सैंकडों पहाडी कीले जिस जिस प्रान्तका रक्षण करते हैं वैसे संक्षणकी योजनाका यह वर्णन है। पहाडी स्थानोंमें इस वर्णनके अनुसार प्रत्येक पहाडीपर एक एक कीला रहे और सब कीले मिलकर उस प्रांतका संरक्षण करें। ये कीले भी लोहेके कीले हों। तथा—

मनोजवा अयमान आयसीं अतरत् पुरम्।
ऋ. ८।१००।८

'मनके समान वेगसे चलकर वह लोहेके कीलेके पार हो गया।' इस मंत्रमें भी लोहेके कीलेका वर्णन है।

प्रक्षोदसा धायसा सस्र एषा।
सरस्वती धरुणं आयसी पूः॥ ऋ. ७।९५।१

'यह सरस्वती नदी धारण शक्तिवाले जलके साथ (आयसी पूः) लोहेकी नगरीके साथ (प्र सस्रे) वेगसे चल रही है।' अर्थात् नदीके किनारेपर लोहेका कीला हो और उस नदीका पानी कीलेकी दिवारके साथ लगता हुआ जाता रहे। नदीके तटपर लोहेका कीला हो और उसमें जनोंकी बस्ती रहती हो, ऐसा यहां वर्णन है। जलके साथ कीलेका वर्णन, नदी तटपरके कीलेका वर्णन यह है। पहाडीपरका कीला और होता है और नदीके तटपरका कीला और प्रकारका होता है। और देखिये—

अधा महीं न आयसी अनाधृष्टो नृपीतये।
पूः भवा शतभुजिः॥ ऋ. ७।१५।१४

'तू (अनाधृष्टः) शत्रुसे आक्रान्त न होकर (नः नृपीतये) हमारे मानवोंके संरक्षण करनेके लिये (शत भुजिः मही आयसीः पूः भव) सैंकडों मानवोंको सुरक्षित रखनेवाली बडी लोहेके प्राकारवाली नगरी जैसी सुरक्षा तू कर। जिस तरह बडा लोहेका कीला मानवोंका संरक्षण करता है, उस तरह यह वीर संरक्षण करे।'

यहां 'महीं आयसीं पूः' बडी लोहेकी प्राकारवाली नगरीका वर्णन है। यहां 'आयसी पूः' का अर्थ लोहेके प्राकारवाली नगरी है। यह 'मही' अर्थात् बडी है। बडी बडी नगरियां प्राकारवाली थी, यह इन पदोंका भाव है, ये झोंपडीयोंके नगर नहीं हो सकते, जिनके बाहर बडे प्राकारवाले कीले हों, वे नगर अच्छे पक्के मकानोंके ही हो सकते हैं। बडी नगरियोंका और भी स्पष्ट वर्णन है।

पृथ्वी पृथिवी बहुला न उर्वी। ऋ. १।१८९।२

'विशाल विस्तीर्ण बडी नगरी' का यह वर्णन है। 'उर्वी पूः' अर्थात् विशाल विस्तारवाली नगरी। यह छोटा ग्राम नहीं है। यह विस्तीर्ण पुरीका वर्णन है।

पहिले अनेक मंत्रोंमें 'आयसी पुरी' का वर्णन आया है। लोहेकी नगरीका अर्थ जिसके कीलेके प्राकारमें लोहा लगा है। लोहेका उपयोग कीलेकी दिवारोंमें किया जाता था, यह इससे स्पष्ट होता है। कीलेकी दिवारोंमें लोहेका बर्ताव करनेके लिये लोहेके कारखाने चाहिये। इतना लोहा पैदा न होगा, तो उसका उपयोग कीलोंकी दिवारोंमें नहीं हो सकेगा। यहां एक ही लोहेका कीला नहीं, परंतु सैकडों लोहेके कीलोंका वर्णन है। इस कारण लोहा बहुत उत्पन्न होना चाहिये। और वह कीलोंकी दिवारोंमें अच्छी तरह लगने योग्य होना चाहिये। 'आयस' का दूसरा कोई अर्थ नहीं होता। लोहेकी बनी वस्तुको ही आयसी कहते हैं। कीलेकी दिवारोंमें थोडासा लोहा लगाना उपहास करना है। अच्छी तरह कीलेकी दीवार मजबूत होने इतना लोहा लगाया जाय तो ही दिवारकी मजबूती हो सकती है।

जिनको इतना लोहा होनेकी परिस्थिति वैदिक समयमें नहीं थी ऐसा प्रतीत होता है वे 'आयसी' का अर्थ 'पत्थर' मानते हैं और पत्थरकी दीवार उन कीलोंकी थी ऐसा समझते हैं। पर यह गलत कल्पना है, क्योंकि पत्थरकी दिवारोंके कीलोंके लिये वेदमें 'अश्मामयी पुरी' का वर्णन है, वह अब देखिये—

शतं अश्मन्मयीनां पुरां इन्द्रो व्यास्यत्।
दिवोदासाय दाशुषे॥ ऋ. ४।३०।२०

'दाता दिवोदासके हितके लिये इन्द्रने शत्रुके सैकडों (अश्मन्मयीनां पुरां) लोहेके कीलोंको (व्यास्यत्) तोडा।' यहां शत्रुके पत्थरोंसे बने कीले थे, जो इन्द्रने तोडे ऐसा वर्णन है।

पत्थरोंके कीले और लोहेके कीले ये विभिन्न हैं इसमें संदेह नहीं हो सकता। ये पृथक् नाम ही ये दो कीले पृथक् है यह बता रहे हैं। कच्ची ईंटोंके कीले भी थे।

आमासु पूर्षु। ऋ. २।३७।६

'(आमा पूः) कच्ची ईंटोंकी दिवारकी नगरीका वर्णन यहां है।' यहां तीन प्रकारके कीलोंका वर्णन हुआ है।

१ आयसीः पूः = लोहेके प्राकारवाली नगरी।
२ अश्मावती पूः = पत्थरोंके प्राकारवाली नगरी।
३ आमा पूः = कच्ची मिट्टीकी प्राकारवाली नगरी।

इन तीन नामोंसे स्पष्ट कल्पना आ सकती है, कि ये तीन प्रकारके प्राकार विभिन्न हैं। कच्ची मिट्टीकी दीवार अथवा कच्ची ईंटोंकी दीवार यह तो साधारण गरीब गांवकी कीलेकी दीवार होगी। पत्थरोंकी दीवार बडे मजबूत नगरीकी कीलेकी दीवार होगी और उससे धनवान बडे नगरकी दीवार लोहेके संयोगसे बनी होगी। तीन विभिन्न नगरोंकी ठीक कल्पना इस वर्णनसे पाठकोंको हो सकती है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि कीलोंकी दिवारोंको मजबूत करनेके लिये दिवारोंमें लोहेका उपयोग किया जाता था।

गायोंवाली नगरी

गाइयोंसे युक्त नगरियोंका वर्णन भी वेदमें दीखता है। इस विषयमें यह मंत्र देखिये—

आ न इन्द्र महीं इषम्
पुरं न दर्षि गोमतीम्।
उत प्रजां सुवीर्यम्॥ ऋ० ८।६।२३

'हे इन्द्र! तू (महीं इषं) बहुत अन्न, (गोमतीं पुरं) गाइयें जहां बहुत हैं ऐसा नगर और उत्तम वीर्यवान प्रजा देता है।' यहां बहुत गौवें जहां हैं, ऐसे बडे नगरोंका वर्णन है। 'पुरं' का अर्थ बडा नगर है, जिस नगरके बाहर कीला रहता है, वह पुर है। छोटे ग्रामको 'पुर' नहीं कहते। ऐसे बडे नगरमें बहुत गौवें हों और बाहर कीला हो ऐसे नगरका यह वर्णन है।

हमने (आयसी पूः) लोहेके कीले, (अश्मामयी पूः) पत्थरोंसे बनाये कीले, (आमा पूः) कच्ची मिट्टीके या कच्ची ईंटोंके बनायें कीले देखें। अब (गोमती पूः) गाइयोंसे युक्त कीले भी देखें। ये सब नगर बडे विशाल थे और सुरक्षाके लिये इनके बाहर कीलेकी दिवारें रहती थीं। कीलेकी दिवारें एकसे लेकर सात सात दिवारें भी रहती थीं। नगरीके छोटे या बडे होनेके कारण दिवारोंकी

संख्या कम या अधिक होती थी। इससे स्पष्ट होता है कि वेदमें कहे नगर बडे विशाल थे और उनकी सुरक्षाके लिये बडी कीलेकी दिवारें, और उनमें बडी द्वारें होती थीं और सुरक्षाका उत्तम प्रबंध रहता था।

नगरोंमें ' सुवर्ग ' के लोगोंके लिये पृथक् तथा अत्यंत सुरक्षित स्थान रहते थे और ' दुर्वर्ग ' के लोगोंके लिये अर्थात् जो लोग अपराध करते हैं, उनके लिये पृथक् स्थान रहते थे।

इस तरह नगरोंकी रचना हुआ करती थी। जहां सुवर्गके लोग रहते हैं वहां दुष्ट कर्म करनेवाले पहुंचने न पांय ऐसी उत्तम व्यवस्था राजप्रबंध द्वारा रहती थी। वे कुकर्मी लोग सुधर जानेपर ही उनको सुवर्गके लोगोंके स्थानमें रहनेकी आज्ञा मिलती थी। क्षीण पुण्य होनेसे ' सुवर्गाल्लोकाच्च्यवन्ते। ' सुवर्ग लोकसे निकाले जाते थे। इससे जनताको सत्कर्म करनेका उत्साह बढता था और दुष्ट कर्म करनेकी प्रवृत्ती दूर होती थी। इस तरह मानवोंकी उन्नति करनेका यह उत्तमसे उत्तम वैदिक मार्ग था। अब ' शारदी पुर ' का वर्णन देखिये—

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः
पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः।
सासहानो अवातिरः॥ ऋ. १।१३१।४
दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः।
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त्॥ ऋ. १।१७४।२
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त्।
हन् दासीः पुरु कुत्साय शिक्षन्॥ ऋ. ६।२०।१०

' (पूरवः) पुरवासी लोग इसके इस पराक्रमका वृत्त (विदुः) जानते हैं। इन्द्रने (शारदीः पुरः) शारदीय नगरोंको (अवातिरः) तोड दिया। (सासहानः अवातिरः) शत्रुके आक्रमणोंको सहकर शत्रुके शारदीय नगरोंको-कीलोंको-इन्द्रने तोड दिया था। (मृध्रवाचः विशः) व्यर्थ बकवाद करनेवाली शत्रुकी मूर्ख प्रजाको मारा और उनके सुखसे रहने योग्य सात शारदीय नगरोंको तोड दिया। विनाश करनेवाली शत्रुके दुष्ट प्रजाको मारा, पुरुकुत्सको सुख दिया और उन शत्रुओंके शारदीय बस्तिके सात नागरीय कीलोंको तोड दिया।

शरदृतुमें सुखसे रहनेके लिये बनाये कीलोंके नगरोंको ' शारदी पुर ' कहते हैं। इससे अनुमान हो सकता है कि ऋतुके अनुसार रहनेके लिये योग्य हवापानीकी अनुकूलताके भी नगर होंगे। आज भी हिमालयमें गर्मीके समय ऊपर जाकर लोग रहते हैं और सर्दीमें नीचे रहते हैं। उसी तरहके ये ' शारदी पुर ' होंगे। अब और एक पुर है वह देखिये—

शत भुजिभिः तं अभिन्हुतेः अघात् पूर्भी रक्षता
मरुतो यं आवत। जनं यं उग्राः तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु॥
ऋ. १।१६६।८

' हे मरुतो! (यं आवत) जिसका संरक्षण तुम करते हैं, (तं) उसका (अघात् अभिन्हुतेः) पापसे तथा विनाशसे (शत भुजिभिः पूर्भिः) सैकडों भोगसाधन जिनमें रहते हैं, ऐसे नगरोंके कीलोंसे (रक्षत) रक्षण करते हैं। हे (उग्राः तवसः विरप्शिनः) हे शूर बलशाली और प्रशंसा योग्य मरुतो! तुम (यं जनं) जिस मनुष्यका रक्षण करते हैं उसके (तनयस्य) पुत्रपौत्रोंका पोषण करके (शंसात् पाथन) दुष्कीर्तिसे बचाव करते हैं। '

इस मंत्रमें ' शतभुजिभिः पूर्भिः ' ये पद हैं। सैकडों भोगसाधन जिनमें हैं ऐसे नगर यह एक अर्थ इसका है और दूसरा अर्थ यह है कि सौ दिवारें जिसमें हैं ऐसे नागरिक कीले। कोई भी अर्थ हो यह एक जातीके पुर हैं। ' पू-पुर् ' ये पद कीलोंके नगरोंके लिये ही बर्ते जाते हैं, यह बात मुख्य है। कीले फिर लोहेके हों, पत्थरके हों, कच्ची ईंटोंके हों या और किसीके हो। परंतु वे कीलेके अन्दरके नगर हैं इसमें संदेह नहीं है। यहांका ' शत-भुजिः ' पद सैकडों भोगसाधनोंका विशेषकर वाचक है। इस विषयमें और देखिये—

अथा महीं न आयसी अनाधृष्टो नृपीतये।
पूः भवा शतभुजिः॥ ऋ. ७।१५।१४

' हे अग्ने! तू (अनाधृष्टः) पराभूत न होनेवाला (नृपीतये) जनताका संरक्षण करनेके लिये (मही आयसी शतभुजिः पूः भव) बडी विस्तृत लोहेकी सौ गुणा बडी कीलेकी नगरी जैसा हो। ' इस मंत्रमें " महीं आयसी शतभुजिः पूः " ' बडी लोहेकी सौ विभागोंवाली पुरी ' का वर्णन है। बडे नगरमें सैकडों विभाग रहनेकी सुविधासे किये जहां होते हैं, उस नगरीका यह वर्णन है। अर्थात् यह वर्णन पूर्वमें किये पुरियोंके वर्णनोंसे अधिक बडी नगरीका वर्णन है, इसमें संदेह नहीं है। इस समय तक—

१ अमा पूः
२ उर्वी पूः
३ पृथ्वी पूः
४ अश्मामयी पूः
५ आयसी पूः
६ गोमती पूः
७ शारदी पूः
८ महो आयसी शतभुजिः पूः

इतनी आठ नगरियोंका वर्णन हमने देखा । इसके अतिरिक्त 'नगरी, ग्राम' आदिका भी वर्णन देखा है। इतने प्रकारके नगरोंका वर्णन बताता है कि वैदिक समयमें अनेक प्रकारके छोटे मोटे शहर थे। और बडी बडी पुरियां भी अनेक प्रकारकी थीं, जिनके चारों ओर कीलेकी दिवारें थीं और उन दिवारोंपर गोला बारूद फेंकनेके चक्र लगे रहते थे। इससे पता लग सकता है कि नगरोंकी सुरक्षाके लिये उस समयकी राज्यव्यवस्थासे कितनी संनद्धता थी।

आजकल हम ये पद कैसे भी प्रयुक्त करते हैं, पर 'पुः पूः पुरीः' जो होगी उसके बाहर कीलेकी दीवार अवश्य रहनी चाहिये, नगरी (नग-री) पर्वतपर ही बसी होनी चाहिये ऐसे इनके लक्षण वैदिक समयमें रूढ थे। इस विषयका अधिक विचार होना आवश्यक है इसलिये हम इनके कुछ मन्त्र यहां अधिक संख्यामें देते हैं।

आयसी पूः

नीचे लिखे मंत्रोंमें 'आयसी पूः' का वर्णन है—

तस्मै तवस्यं अनु दायि सत्रा इन्द्राय देवेभिः
अर्णसातौ। प्रति यद् अस्य वज्रं बाह्वोः धुः
हत्वी दस्यून् पूर आयसीः नि तारीत् ॥

ऋ. २।२०।८

'जलकी प्राप्ती हो इसलिये दिव्य विबुधोंके द्वारा उस इन्द्रके लिये (तवस्यं) बलवर्धक हवि दिया जाता है। इस इन्द्रके बाहुपर जिस समय (वज्रं प्रतिः धुः) वज्र धारण किया जाता है। उस समय वह इन्द्र (दस्यून् हत्वी) शत्रुओंका वध करता है और शत्रुओंके (आयसीः पुरः) लोहेके कीलोंको (नि तारीत्) तोड देता है।'

इस मंत्रमें इन्द्र लोहेके कीलोंको तोड देता है और शत्रुओंका वध करता है ऐसा कहा है। अर्थात् ये कीले शत्रुओंके है। यहां 'आयसीः पुरः' लोहेके अनेक कीले शत्रु'क इन्द्रने तोडे हैं ऐसा वर्णन है। अर्थात् शत्रुके भी लोहेके कीले होते थे, जैसे आर्योंके होते थे। यह बात यहां स्पष्ट हो रही है। और इन्द्रकी शक्ति अर्थात् सैनिक बल इतना विशाल रहता है कि शत्रुके बडे बडे दुर्ग रहे, तो भी वह उन सबको तोड देता है। और सब शत्रुओंका वध वह करता है।

अपना बल शत्रुके बलसे अधिक रहना चाहिये यह इसका तात्पर्य है। जिस राजाके पास बल न हो उस राजाका मूल्य कुछ भी नहीं रहता। शक्तिसे ही शासकका महत्त्व रहता है। देखिये—

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो
वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वं आयसीः अधृष्टाः।
मा वः सुस्रोत् चमसो दंहता तम् ॥

ऋ. १०।१०१।८; अथर्व. १९।५८।४

१ व्रजं कृणुध्वम् स हि वो नृपाणः— गोशालाएं बनाओ, वह स्थान आपके लिये दुग्धपान करनेका है।
२ वर्म सीव्यध्वं, बहुला पृथूनि— कवच सीवो, ये कवच बहुत हों और बडे शक्तिशाली मोटे हों, (फटनेवाले न हों)।
३ अधृष्टा आयसीः पुरः कृणुध्वम्— शत्रुसे आक्रमण जिनपर नहीं हो सकता ऐसी लोहेकी दीवारवाली पुरियां बनाओ, कीलेकी दीवारोंवाली नगरियां बनाओ जिससे शत्रुका भय किसी तरह न हो।
४ वः चमसः मा सुस्रोत्, तं दंहत— आपक बर्तन चूते न रहें उनको आप सुदृढ करो।

इस मंत्रमें 'अधृष्टा आयसी पुरः कृणुध्वं' शत्रुका हमला जिनपर नहीं हो सकता ऐसी लोहेकी दीवारवाली पुरियां बनाओ ऐसा कहा है। यह वेदका आदेश वैदिक धर्मियोंके लिये है। नगर ऐसे बनें की जिनपर शत्रुका आक्रमण न हो सके। आक्रमण शत्रुने किया तो उनका नाश किया जाय ऐसा शस्त्रास्त्रोंका प्रबंध कीलेकी दिवारपर ही हो। चक्र आदि दीवारपर लगे रहें। शत्रु आनेपर उनका तत्काल नाश किया जा सके ऐसा प्रबंध रहे। शत्रुका आक्रमण होनेके पूर्व ही यह सब अपनी तैयारी होनी चाहिये। आक्रमण होनेपर ऐन वख्तपर कुछ भी नहीं हो सकता। इस

लिये वेद अपनी संरक्षणकी तैयारी पहिलेसे ही करके रखो, ऐसी सावधानीकी सूचना दे रहा है। कवच पहिलेसे सीकर मजबूत करके रखो। यह सब लढाईकी तैयारी ही है।

राष्ट्रमें शत्रुसे लडाई करनेकी सिद्धता सदा रहनी चाहिये। शान्ति रखना यह अपना उद्देश्य है ही, हम किसी दूसरेपर हमला नहीं करेंगे, पर किसीने हमपर आक्रमण किया तो हम चुप भी नहीं रहेंगे, ऐसे शत्रुको हम रहने नहीं देंगे।

क्षत्रियोंकी तैयारी

राष्ट्रमें क्षत्रियोंका अस्तित्व इसीलिये है कि, वे शत्रुसे लडनेके लिये तैयार रहें और वे सदा जनताका संरक्षण करें, इसीलिये कहा है—

क्षत्राय राजन्यम्। वा. यजु. ३०।२

'(क्षत्+त्राय) शत्रुके आघातसे बचानेके लिये (राजन्यं) क्षत्रियको नियुक्त करो।' 'क्षत्र'= पदका अर्थ 'राज्य, शक्ति, राज्यशासन, राज्यशासक मण्डल, युद्ध करनेवाले शूर, शौर्य, धैर्य, प्रतापी लोक।' 'क्षतत्राणात् क्षत्रं, क्षत्रेण युक्तः क्षत्रियः' क्षत अर्थात् दुःखसे जो संरक्षण करता है वह क्षत्रिय है। 'क्षण् हिंसायां' इस धातुसे क्षत पद बनता है, इस कारण इस 'क्षत' का अर्थ 'हिंसा, दुःख, कष्ट, हानि, अवनति' आदि है। राष्ट्रको अवनतिसे जो बचाता है वह क्षत्रिय है, शत्रुओंके आक्रमणसे बचानेवाला वीर क्षत्रिय कहाता है। जिन गुणोंसे राष्ट्रके स्वत्वकी सुरक्षा होती है, देशका बचाव होता है उन गुणोंका नाम 'क्षत्र' (क्षत्-त्र) है।

ऐसे कार्योंके लिये क्षत्रियोंको नियुक्त करना चाहिये। ग्राम, नगर, पुर आदिकोंका संरक्षण करनेका कार्य ये क्षत्रिय करें। इन वीरोंके विषयमें वेदमें ऐसे मंत्र आये हैं—

नयसि इत् उ अति द्विषः कृणोषि उक्थ शंसिनः।
नृभिः सुवीर उच्यसे॥ ऋ. ६।४५।६

"(द्विषः) शत्रुओंसे (अति नयसि) बचाकर पार ले जाता है (इत् उ) और लोगोंको (उक्थ-शंसिनः कृणोषि) स्तुति करनेवाले बनाता है अतः (नृभिः सुवीरः उच्यते) सब मनुष्य तुम्हें उत्तम वीर कहते हैं।" शूर पुरुषका यही कार्य है कि वह जनताका शत्रुओंसे संरक्षण करें और वह लोगोंको ईश्वरकी स्तुति करनेके कार्यमें लगावे। तथा और देखिये—

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि। तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्सवसाळहः साह्वान् पृतनासु शत्रून्।
ऋ. ९।९०।३

"(शूरग्रामः) शौर्य वीर्यादि क्षात्र गुणोंसे युक्त, (सहावान्) शत्रुके आक्रमणोंको सहन करके अपने स्थान पर स्थिर रहनेवाला, (जेता) विजयशाली, (धनानि सनिता) धनोंका दान करनेवाला, (तिग्म-आयुधः) तीक्ष्ण शस्त्रोंवाला (क्षिप्र-धन्वा) धनुष्यसे बान शीघ्रातिशीघ्र फेंकनेवाला (समत्सु असाळहः) युद्धोंमें शत्रुके लिये असह्य (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) युद्धोंमें शत्रुके साथ शौर्यसे युद्ध करनेवाला (सर्व-वीरः) सब प्रकारसे वीरताके गुणोंसे युक्त है, वह तू इन गुणोंसे (पवस्व) हमें पवित्र कर।"

इस मंत्रमें वीरोंमें कौनसे गुण रहने चाहिये वे सब गुण दिये हैं। हमारे कीलोंके नगरोंमें रक्षणार्थ जो वीर रखने चाहिये वे ये हैं। नगर रक्षणार्थ वीर रखे जाते हैं, कीलोंके द्वारोंपर तथा कीलोंके बुर्जोंपर रखे होते हैं, तथा युद्धमें प्रत्यक्ष जाकर लडनेवाले वीर होते हैं, ये सब वीर उत्तमसे उत्तम शूर होने चाहिये। तथा—

असमं क्षत्रं असमा मनीषा। ऋ. १।५४।८
वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः। वा. यजु. ३।२३;
श. प. ब्रा. ५।२।२।५; तै. सं. १।७।१०

राष्ट्रमें 'क्षात्र शक्ति विशेष हो, तथा बुद्धि भी विशेष हो।' तथा 'हम राष्ट्रमें अग्रभागमें रहकर जागते रहें।' अर्थात् हम शूर वीर होकर राष्ट्रहितार्थ सतत जागते रहें। अपने राष्ट्रकी उन्नति करनेके कार्यमें हम सुस्ती न दिखावें। हमारे प्रयत्न किसके लिये होने चाहिये, इस विषयमें देखिये—

महते क्षत्राय, महत आधिपत्याय, महते जानराज्याय। वा. यजु. ९।४०; तै. सं. १।८।१०

'बडे शौर्यके लिये, बडे अधिकारके लिये तथा बडे जानराज्य-लोकराज्य-के लिये हमारे प्रयत्न होने चाहिये।' जानराज्यकी उत्तम व्यवस्था हो, सच्चा लोकराज्य संस्थापित हो, सर्वजनहितकारी राज्यशासन हो इसलिये हम सबके प्रयत्न होने चाहिये।

पूर्व स्थानमें जनताका संरक्षण करनेके लिये नगरके बाहर बडे बडे कीले किये जांय, उन कीलोंकी दिवारें पत्थरोंकी, लोहेकी तथा पक्की ईंटोंकी हों ऐसा कहा है। अब कहते हैं कि उनमें जो लोग रहेंगे वे उत्तम शूर वीर हों, तथा वे उत्तम जानराज्यकी स्थापना करनेके लिये यत्न करनेवाले हों। इन कीलोंकी पुरियोंमें सच्चा जनताका राज्य हो। वहां अनियन्त्रित राज्यशासन न हो, परंतु प्रजा द्वारा नियंत्रित शासन हो।

बलाय अनुचरम्। वा. यजु. ३०।८५

'सैन्यके लिये अथवा अपना बल बढानेके लिये अनुकूल चलनेवालोंको नियुक्त करो।' आज्ञाके अनुसार चलनेवाले सैनिक ही राष्ट्रकी उत्तम सुरक्षा कर सकते हैं। इसलिये सैन्यमें शिस्त ऐसी रखनी चाहिये कि वहां सब कार्य आज्ञाके अनुसार ही होता रहे। कोई एक भी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाला न हो। इससे संरक्षक सेनामें उत्तम शिस्त और बल रह सकता है।

नरिष्ठायै भीमलम्। वा. यजु. ३०।१४

'(नरि-स्थायै) नरोंकी स्थिति उत्तम रहनेके लिये (भीमलं) महाप्रतापी रक्षक रखो।' जनतामें सुस्थिति रहनेके लिये जो रक्षक रखे जांय वे दीखनेमें भयानक हों। साधारण मनुष्य उनसे डरें ऐसे रक्षक नगरोंमें सुरक्षाके लिये स्थान स्थानपर रखे जांय।

पिशाचेभ्यो वि-दल-कारीम्। वा. यजु. ३०।३९

'पिशाच जैसे क्रूर कर्म करनेवालोंसे जनताकी सुरक्षा करनेके लिये विशेष सेनाकी दल रचना करनेवालेको रखो।' वह सेनाकी टुकडियोंकी विशेष रचना करेगा और उनके द्वारा पिशाच सदृश दुष्टोंको दूर करेगा।

'पिशितं आचामति इति पिशाचः'= जो कच्चा मांस खाते हैं, रक्त पीते हैं, ऐसे दुष्ट कर्म करनेवालोंसे प्रजाका बचाव करना है तो सेनाकी विशेष रचना करके ही प्रजाको सुरक्षित रखना चाहिये। छोटी छोटी टुकडियां सेनाकी बनाकर इनसे प्रजाजनोंका संरक्षण करना योग्य है। इसी तरह—

यातुधानेभ्यः कण्टकी-कारीम्। वा. यजु. ३०।४०

'डाकुओंसे रक्षा करनेके लिये कांटेवाले शस्त्र रखनेवाले सैनिकोंको नियुक्त करो।' कण्टकीका अर्थ कांटेवाला शस्त्र। जिसपर चारों ओर कांटे रहते हैं ऐसा शस्त्र। जिसके आघातसे डाकुओंपर कांटोंका आघात होकर डाकुओंका शीघ्र नाश हो सकता है।

शस्त्रास्त्र बनानेवाले

पूर्वोक्त रीतिसे कहां किसकी नियुक्ति करनी चाहिये इस विषयमें आदेश वेद मंत्रोंमें है। अब शस्त्रास्त्र निर्माण करनेके विषयमें आदेश देते हैं—

मेधायै रथकारम्॥ १९॥
शरव्यायै इषुकारम्॥ २५॥
हेत्यै धनुष्कारम्॥ २६॥
कर्मणे ज्याकारम्॥ २७॥ वा. यजु. ३०

'रथ बनानेवाले, बाण बनानेवाले, धनुष्य निर्माण करनेवाले, धनुष्यकी डोरी बनानेवाले कारीगरोंको रखो।' ये शस्त्रास्त्र तैयार करते रहें और रक्षक सैनिकोंको जितने चाहिये उतने शस्त्रास्त्र समय समय पर प्राप्त होते रहें। इस तरह वेदने नगरोंके रक्षणके लिये कीलोंकी रचना करनेके विषयमें जैसा कहा है, वैसा ही सैनिकोंकी व्यवस्थाके विषयमें भी कहा है और सैनिकोंके शस्त्रास्त्रोंके संबंधमें भी कहा है।

अपने रक्षक सैनिकोंके पास शीघ्रगामी वाहन चाहिये, अन्यथा वे डाकुओंको पकडनेमें असमर्थ रहेंगे। इस विषयमें वेद मंत्रोंमें कहा है—

अरिष्ट्यै अश्व-सादम्॥ ८८॥
अर्मेभ्यो हस्तिपम्॥ ६१॥
जवाय अश्वपम्॥ ६२॥ वा. यजु. ३०

'(अ-रिष्ट्यै) अविनाशके लिये घुड सवारको, विशेष गतिके लिये हाथी सवारको तथा वेगसे जानेके लिये घोडोंके पालन करनेवालेको रखो।' ये समयपर वेगवान् वाहनमें लगाकर वेगसे होनेवाले कार्यको कर सकते हैं। चोर, डाकू आदि भागने लगे, तो उनको पकडनेके लिये उनसे अधिक वेगवान् साधन अपने पास चाहिये। यह तो सीधी बात है।

रक्षकोंकी नियुक्ति

जैसे नगरोंके संरक्षणके लिये रक्षक रखने चाहिये, उसी प्रकार वन आदिके लिये भी संरक्षक रखने चाहिये। नगरके चारों ओर कीला बनाया जा सकता है, वैसा वनके चारों ओर नहीं बना सकते, पर वनादिके लिये रक्षक तो रख सकते हैं। इस विषयमें ये वेदमंत्र देखने योग्य हैं—

वनाय वनपम् ॥ १५१ ॥
अन्यतो अरण्याय दावपम् ॥ १५२ ॥
पर्वतेभ्यः किं पुरुषम् ॥ १२२ ॥
सानुभ्यः जम्भकम् ॥ १२१ ॥
गुहाभ्यः किरातम् ॥ १२० ॥
नदीभ्यः पुञ्जिष्टम् ॥ ३१ ॥
सरोभ्यो धैवरम् ॥ १११ ॥
तीर्थेभ्यः आन्दम् ॥ ११७ ॥
यादसे शावल्यम् ॥ १५५ ॥
उत्कूलनिकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम् ॥ ९६ ॥
विषमेभ्यो मैनालम् ॥ ११८ ॥
वैशन्ताभ्यो वैन्दम् ॥ ११३ ॥
नड्वालाभ्यः शौष्कलम् ॥ ११४ ॥
पाराय मार्गारम् ॥ ११५ ॥
आवाराय कैवर्तम् ॥ ११६ ॥
स्थावरेभ्यो दाशम् ॥ ११२ ॥
ऋक्षिकाभ्यो नैषधम् ॥ ३२ ॥ वा. यजु. ३०

वनका रक्षण करनेके लिये एक वनरक्षक नियत करो वह वनका संरक्षण करे। अरण्यका आगसे बचाव करनेके लिये एक अग्निरक्षक रखो, पर्वतोंका रक्षण करनेके लिये एक अधिकारी रखो, पहाडियोंकी उतराईके रक्षणके लिये एक रक्षक रखो। गुहाओंकी सुरक्षाके लिये किरातको रखो, वे किरात गुहाओंकी सुरक्षा करेंगे। नादियोंकी रक्षाके लिये पुंजिष्टको रखो और सरोवरोंकी रक्षाके लिये धीवरको रखो। तीर्थोंकी सुरक्षाके लिये एक अधिकारी रखो। साधारण जल स्थानोंकी रक्षाके लिये शबरोंको रखो। पानीके चढाव तथा उतारके लिये तीनों स्थानोमें रहनेका जिनको अभ्यास है वैसे पुरुषको रखो। विषम स्थानोंका रक्षण करनेके लिये तथा छोटे छोटे तालावोंके लिये, तथा गीले स्थानोंके लिये योग्य पुरुषोंको संरक्षणके लिये रखो। नदीके पार जानेके स्थानपर मार्ग उत्तम रीतिसे जो जानते हैं उनको रखो। इसी तरह उतारके स्थानपर कैवर्तको रखो क्योंकि ये पानीके मार्गको ठीक तरह जानते हैं। स्थावरके रक्षणके लिये तथा क्रूर पशु जहां होते हैं उन स्थानोंकी सुरक्षाके लिये वन्य लोगोंको रखो।

यहां वन, जंगल, पानीके स्थान, पहाडके चढ उतार, नदियोंके चढ उतारके स्थानोंपर संरक्षक नियुक्त करनेकी आज्ञाएं हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि वेदमें नगरोंमें रहनेवालोंके रक्षणार्थ ही आज्ञाएं दी हैं ऐसा नहीं, परंतु वनों और जंगलोंको भी सुरक्षित रखनेके लिये वहांके विशेष विशेष स्थानोंपर सुयोग्य अधिकारी रखनेके आदेश दिये हैं। इस तरह वैदिक कालमें आप जंगलमें गये तो भी वे घने जंगल, पर्वतोंकी गुहाएँ, नादियोंके स्थान आपको सुरक्षित मिलेंगे। सर्वत्र सुरक्षाका उत्तम प्रबंध था और किसी जगह संरक्षण नहीं है ऐसा राष्ट्रभरमें एक भी स्थान आपको नहीं मिलेगा। ऐसा सुरक्षाका उत्तम प्रबंध करनेके लिये वेद आज्ञा दे रहा है। तथा अब गृहरक्षणके लिये वेदके आदेश देखिये—

द्वार्भ्यः ग्रामम् ॥ ५३ ॥
गेहाय उपपतिम् ॥ ४२ ॥
भद्राय गृहपम् ॥ ६८ ॥ वा. यजु. ३०

'घरके दरवाजोंपर, घरके रक्षणके लिये तथा घरका कल्याण हो इसलिये घरकी रक्षा करनेवालोंको नियुक्त करो।' यहां नगरोंके अन्दर विशेष घरोंके रक्षणार्थ पहरेदारको नियुक्त करो ऐसा कहा है।

साधारणतः नगरोंमें विशेष धनिकोंके घरोंका रक्षण करना आवश्यक होता है। उन धनिकोंके घरोंका रक्षण हुआ तो कल्याण होता है इसलिये धनिकोंके द्वारोंपर उनके घरोंका रक्षण करनेके लिये रक्षक नियुक्त करने चाहिये।

इसी तरह गलियोंके संरक्षक, कीलोंके द्वारोंके संरक्षक, कीलोंकी दिवारोंके संरक्षक स्थान स्थानपर रखने चाहिये। सर्वसाधारण आदेश इस विषयमें ये हैं—

भूत्यै जागरणम् ॥ १२८ ॥
अभूत्यै स्वप्नम् ॥ १२९ ॥ वा. यजु. ३०

'उन्नतिके लिये जागृत रहना योग्य है तथा अवनतिके लिये सुस्ती कारण होती है।' अर्थात् जागृतिसे सब कार्य करना हितकारक रहता है, आलस्य अथवा सुस्तीसे सर्वस्व नाश ही होता है।

यह सर्वसाधारण उत्तम बोध है। प्रथम नगरोंके बाहर प्राकार करनेके लिये कहा, प्राकारोंमें बडे द्वार रखे, उन द्वारोंपर पहारेकरी रखे, बुरुजोंपर चक्र आदि शत्रुका नाश करनेवाले साधन रखे। विशेष धनिकोंके घरोंपर, द्वारोंपर, तथा गलियोंके संरक्षणके लिये रक्षक रखे। इतनी व्यवस्था करनेके पश्चात् वनोंके रक्षक, अरण्यका अग्निसे रक्षण करनेके लिये नादियों, सरोवरों, तालावों तथा पानीके चढावों

और उतारोंपर रक्षक रखे, पर्वतोंके शिखरों, उतराइयों, गुहाओं तथा जंगलोंमें रक्षक राज्यशासनके द्वारा रखे गये तो चोर, डाकू आदि दुष्ट लोग कहां भी गये तो वे अवश्य पकडे जायंगे। राष्ट्रका कोई ऐसा स्थान नहीं खाली रहा कि जहां दुष्ट लोग छिपकर रह सकें।

इस प्रकार वैदिक राज्यशासन होता था। इसमें सर्वत्र जागरूकता रहती थी। सावधानता रहती थी। राष्ट्रके कोने कोनेतक उत्तम संरक्षणका प्रबंध रहता था। अब हम इन रक्षकोंके पास तथा सैनिकोंके पास शस्त्रास्त्र कैसे रहते थे, इनका विचार करते हैं—

शस्त्र-अस्त्रोंकी सिद्धता

वेदमें कितने प्रकारके शस्त्र-अस्त्र हैं इसका यहां अब विचार करना योग्य है, क्योंकि संरक्षण करनेवाले अपने पास किन शस्त्रोंको रखते थे यह यहां जानना आवश्यक है —

ऋष्टिः

भालेको 'ऋष्टि' कहते हैं। इसकी दण्डी बडी लंबी होती है और आगे फौलादका नोकदार फाल. रहता है। इसका वर्णन वेद मंत्रमें इस तरह किया है—

ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः।
अजायन्त स्वभानवः॥ ऋ० १।३७।२

'ये स्वयं तेजस्वी मरुत् अपने हरिणियों, भालों, कुन्हाडों तथा अपने अलंकारोंके साथ प्रकट हुए हैं।' तथा—

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि
येतिरे शुभे। अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः
साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः॥ ४॥
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव
सुपिशो विश्ववेदसः। क्षपो जिन्वन्तः पृषती-
भिर्ऋष्टिभिः समित् सबाधः शवसाहिमन्यवः॥८॥

ऋ. १।६४

'ये वीर अपने शरीरोंको अलंकारोंसे सुशोभित करते हैं, छातीपर शोभाके लिये हार धारण करते हैं। उनके कंधोंपर भाले चमकते हैं, ये दिव्य वीर अपने बलके साथ निर्माण हुए हैं। ये वीर सुन्दर, सिंहोंके समान गर्जना करनेवाले प्रभावी, शूर, हरिणियोंके साथ जाकर भालोंसे शत्रुओंका नाश करनेवाले, सांपोंके समान क्रोधी, भालोंसे शत्रुके साथ लडते हैं।'

इस तरह इन भालोंका शत्रुपर प्रयोग करनेका वर्णन वेदमंत्रोंमें है। भालोंसे ये वीर लडते हैं और शत्रुका नाश करते हैं। ऋष्टिषेण (ऋष्टि-सेन) एक ऋषिका नाम ऋ. ८।५।१३ में आया है। ऋष्टिषेणका पुत्र आर्ष्टिषेण है।

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदत्। ऋ. ८।५।१३

'ऋष्टिषेणका पुत्र ऋषि यज्ञमें होत्र कर्म करनेके लिये बैठा।' इसमें 'ऋष्टि-सेन' पद है। 'भालोंवाले सैनिकोंका मुख्य अधिकारी' यह इस पदका अर्थ है। भालेवाले सैनिक होते थे और उनका मुख्य अधिकारी एक होता था। इसका तात्पर्य यह है कि भालोंवाली सेना वैदिक समयमें होती थी।

असि = तलवार

भालोंके विषयमें हमने वर्णन देख लिये। अब तलवारका वर्णन देखते हैं। 'असि' पद तलवारका वाचक वेदमें है। देखिये—

'मा त्वातपत् प्रियः आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठपत् ते। मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः॥

ऋ. १।१६२।२०

'ऊपर जानेके समय तेरा प्रिय आत्मा तुझे कष्ट न देवे। शस्त्र तेरे शरीर पर घाव न करे। लोभी मनुष्य तलवारसे काट काट कर तेरे अवयव पृथक् पृथक् न करे।' यहां 'स्वधिति और असि' ये दो शस्त्र कहे हैं। 'स्वधिति' छुरीका नाम है और 'असि' तलवारका नाम है। तथा—

उदार स्फोटक अस्त्र

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च।
असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद् हृदि।
सर्वं तदर्बुदे त्वमामित्रेभ्यो दृशे कुरु उदारांश्च प्रदर्शय॥
सप्त जातान्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन्।

अथर्व. ११।९।१;६

'जो बाहु बल है, जो बाण हैं, जो धनुर्धारियोंके पराक्रम हैं, जो तलवारें, फरशियां और अनेक शस्त्र हैं तथा जो अन्तःकरणमें योजनाएं है, यह सब शत्रुको दिखाओ तथा जो 'उदार' हैं उनको भी शत्रुको दिखाओ। सात जातियां उदारोंकी हैं, उनको शत्रुके सामने दिखाओ।'

यहां धनुष्य, बाण, तलवार, फरशियां कुन्हाडे और

डालता है और धनुष्यकी डोरीके आघातोंसे हाथका संरक्षण करता है। वैसा सब कर्मोंको जाननेवाला मनुष्य दूसरे मनुष्यका सब प्रकारसे बचाव करे।' गोधाके चर्मसे हाथपर वेष्टन डालनेसे हाथका बचाव होता है, नहीं तो धनुष्यकी डोरी बाण छूटनेसे डावे हाथको घसीट कर जायगी और हाथकी चमडी उससे उसी समय उतर जायगी। धनुष्यधारी वीरके डावे हाथका संरक्षण करनेके लिये इस तरह यह हस्तघ्न सहायक होता है। यहां 'हस्त+घ्न' पदमें 'घ्न' यह पद रक्षण करनेके अर्थमें है। वर्मके विषयमें मंत्रमें कहा है—

त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं
वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ॥ ऋ. १।३१।१५

'हे अग्ने! तू दक्षिणा देनेवाले मनुष्यको चारों ओरसे सुरक्षित रखता है जैसा अच्छा सीया कवच मनुष्यका संरक्षण करता है।' इसमें कवचका रक्षण करनेका सामर्थ्य वर्णन किया है। इसी वर्मके विषयमें और देखो—

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि। ऋ. ६।७५।१८

'तेरे सब मर्मोंको कवचसे मैं आच्छादित करता हूं।' यहां कवचसे सब मर्म आच्छादित होनेसे मनुष्यकी सुरक्षा कवचसे होती है यह सिद्ध होता है। तथा—

यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥
ऋ. ६।७५।१९

'जो (अ-रणः स्वः) जो असंतुष्ट हुआ स्वकीय अथवा जो नीच परकीय हमारा नाश करनेकी इच्छा करता है, सब देव उसका नाश करें, ज्ञान (ब्रह्म) ही मेरा आन्तरिक कवच है।' यहां ज्ञानको आन्तरिक कवच कहा है। जो अपना रक्षण अपने अन्दरसे करता है वह आन्तरिक कवच बडा महत्वका है। यहां ज्ञानको भी संरक्षक कवच कहा है और कवच वीरके मर्मोंका संरक्षण करता है, और इस तरह जहां कवच रहता है वहांका संपूर्ण रक्षण होता है ऐसा कहा है।

'शिप्र' पद शिरो रक्षकके लिये आता है। 'शिरस्त्राण' इसका अर्थ है। ये शिरस्त्राण कई प्रकारके होते थे। इनके नामोंसे ही इनका वर्णन हो सकता है—

अयः शिप्राः = लोहेके शिरस्त्राण।

पीवो-अश्वा शुचद्रथा हि भूता
ऽयःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ॥ ऋ. ४।३७।४

'पुष्ट अश्व जिनके हैं, तेजस्वी रथ जिनके हैं, लोहेके शिरस्त्राण जो धारण करते हैं वे (वाजिनः) बलवान और (सु-निष्काः) उत्तम धनवान् होते हैं।' यहां लोहेके शिरस्त्राण धारण करनेवाले ऋभुओंका वर्णन है। इनके सिर पर लोहेका शिरोरक्षण रहता था।

हिरण्यशिप्रः— सुवर्ण शिरस्त्राण।

हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः
पृक्षं यात पृषतीभिः समन्यवः ॥ ऋ. २।३४।३

'(हिरण्य-शिप्राः) सुवर्णका शिरस्त्राण धारण करनेवाले मरुत् वीर शत्रुओंको हिलाते हुए धब्बोंवाली हिरणोंके रथोंमेंसे यज्ञस्थानमें जाते हैं।' यहां 'हिरण्य-शिप्राः' पद सोनेके शिरस्त्राणका भाव बता रहा है। जरतारीका शिरस्त्राण ऐसा भी भाव इसका हो सकता है—

द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक ॥ ३ ॥
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः ॥ ४ ॥ ऋ. १०।९६

इन मंत्रोंमें 'सु-शिप्रः, हरिशिप्रः' ये पद हैं। 'उत्तम शिरस्त्राण तथा दुःखका हरण करनेवाला शिरस्त्राण' ये इसके अर्थ हैं। इस तरह (शिप्र) शिरस्त्राण कई प्रकारके थे, यह इससे सिद्ध होता है। शरीरपर कवच थे, वे भी अनेक प्रकारके थे। सिरपर शिरस्त्राण भी अनेक प्रकारके थे। इनमें शिरका संरक्षण तथा सौंदर्य देखना होता था। सिरका संरक्षण मुख्य है, पश्चात् सौंदर्य देखना होता है।

ध्वज

नगर, कीलोंके नगर, सैन्य, शस्त्रास्त्र ये हमने देखे। अब हम राष्ट्रके ध्वजका विचार करते हैं। शत्रुके साथ युद्ध करनेके समय अपना ध्वज ऊंचा रहना चाहिये। क्योंकि इस ध्वजको देखकर सैनिक उत्साहसे युद्ध करते हैं। ध्वज न रहा तो सैनिक निरुत्साहित होकर पलायन करने लगते हैं। यह तो युद्धकी बात है पर अन्य समयोंमें भी कीलेकी दिवारपर ध्वज फहरना चाहिये, जहां शासक रहता हो वहां ध्वज फहरना आवश्यक है। इस तरह ध्वजका महत्व वेदमें भी सर्वत्र माना है; इसलिये संक्षेपसे ध्वजके विषयमें अब थोडासा वर्णन देखना यहां आवश्यक है।

स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः
पतान्ति। शुवं तां मित्रा वरुणावमित्रान् हतं
पराचः शर्वा विषूचः। ऋ. ७।८५।२

'इस संग्राममें शत्रुके साथ हमारे वीर स्पर्धा करते हैं,

इन युद्धोंमें ध्वजोंपर शत्रुके अस्त्र गिरते हैं, हे मित्र और वरुणो ! तुम दोनों शत्रुओंको मारो और हिंसक शस्त्रसे शत्रुको चारों ओर भगा दो । '

यहां ' ध्वजेषु दिव्यवः पतन्ति ' अर्थात् ध्वजोंपर तेजस्वी अस्त्र शत्रु फेंकते हैं, ऐसा कहा है । शत्रुका ध्वज तोडना यह भी एक युद्धकी नीति है और अपने ध्वजका संरक्षण करना यह अपने रक्षकोंका कर्तव्य है । इस दृष्टिसे ध्वजका महत्व है । तथा और देखिये—

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेषु अस्माकं या इषवः ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु अस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥ ऋ. १०।१०३।१२

' हमारे ध्वज फहरते रहनेके समय इन्द्र हमारा संरक्षण करे, जो हमारे शस्त्र हैं वे विजयी हों, हमारे वीर श्रेष्ठ रहें, सब देव युद्धोंमें हमारा संरक्षण करें । ' यहां ध्वजका महत्व बताया है—

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं उदाराः केतुभिः सह । सर्पा इतर जना रक्षांस्यनु धावत ॥ अथर्व.११।१०।१

' हे उदार सैनिको, उठो, सिद्ध हो जाओ, अपने ध्वजोंके साथ शत्रुपर आक्रमण करो । हे सर्प और इतर जनहो चलो । ' यहां शत्रुपर आक्रमण करनेके समय अपने ध्वज लेकर चलो ऐसा कहा है । अपने ध्वजको संभालते हुए शत्रुपर आक्रमण करो यह भाव यहां है ।

सूर्य चिन्हका ध्वज

वेदमें सूर्य चिन्हका ध्वज है ऐसा दीखता है । देखिये—

एता देव सेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः । अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥ अथर्व. ५।२१।१२

' ये हमारी दिव्य सेनाएं एक विचारसे अपने सूर्य चिन्हवाले ध्वज लेकर शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें । यहां अपनी सेनाको ' सूर्य केतवः ' कहा है, अर्थात् इनका ध्वज सूर्य चिन्हवाला था, इसमें संदेह नहीं है ।

इस तरह ध्वजका महत्व वेदमें वर्णन किया है । अपने संरक्षणके कार्यके लिये जैसा शस्त्रास्त्रोंका उपयोग है, जैसा सैनिकोंका उपयोग है वैसा ही उत्साह संवर्धनके लिये ध्वजका भी उपयोग है । संरक्षणका विचार करनेके समय इन सब बातोंका विचार करना आवश्यक है । मान लीजिये कि अपने नगर कीलोंमें बसे हैं, पर उनके पास सेना और शस्त्रास्त्र नहीं हैं, अथवा जैसे चाहिये वैसे नहीं है, तो अपना पराभव निःसंदेह होगा । इसलिये अपने संरक्षणका जिस समय विचार करना है, उस समय इन सब बातोंका अच्छी तरह विचार करना अत्यंत आवश्यक है । थोडीसी न्यूनता रही, तो पराजय होगा, अतः अच्छी तरह सावधानता रखनी चाहिये । वेदमें कहे राष्ट्रीय संरक्षणके कार्यमें सावधानताका आदेश महत्वका है ।

पुरोहितके आधीन संरक्षण

राष्ट्रका वा नगरोंका संरक्षणका कार्यालय पुरोहितके आधीन वेदोक्त पद्धतिसे था । स्थानस्थानका संरक्षणका कार्य अन्य रक्षक ही करते थे, पर संरक्षणाध्यक्ष पुरोहित रहता था । इस विषयमें कुछ वेदमंत्र देखिये—

ऋषिः वसिष्ठः । देवता विश्वेदेवाः ।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं१ बलम् । संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः ॥ १ ॥ अथर्व. ३।१९

१ मे इदं ब्रह्म संशितं— मेरा यह ज्ञान तेजस्वी है अर्थात् मैंने जो ज्ञान इस राष्ट्रमें फैलाया है, वह अत्यंत तेजस्वी है । इस तेजस्वी ज्ञानसे सब प्रजा तेजस्वी हुई है । प्रजासे निरुत्साह, उदासीनता, निर्बलता दूर हुई है और उत्साह, आशावाद तथा ध्येयवाद और सबलता इस राष्ट्रकी प्रजामें उत्पन्न हुई है ।

२ मे इदं वीर्यं बलं संशितं— मेरे इस राष्ट्रका वीर्य और बल तीक्ष्ण हुआ है । राष्ट्रमें पराक्रम करनेकी शक्ति बढ गई है । नये नये कार्य प्रारंभ करनेका उत्साह इस प्रजामें आ गया है । यह मेरे ज्ञानके प्रचारसे हो गया है ।

३ संशितं क्षत्रं अजरं अस्तु—इस राष्ट्रका तेजस्वी क्षात्र तेज क्षीण होनेवाला नहीं है । मैंने जो ज्ञान बढाया है उस ज्ञानसे इस राष्ट्रका क्षात्र बल तथा उत्साह बढता ही जायगा।

४ येषां जिष्णुः पुरोहितः अस्मि— जिनका मैं जयशाली पुरोहित हूं, उनका विजय निश्चित है, क्योंकि मैंने इस राष्ट्रकी सब प्रचारसे तैयारी ही ऐसी उत्तम की है ।

वसिष्ठ पुरोहित जिस राज्यका था, उस राज्यको उन्होंने अपनी सुयोग्य शिक्षाद्वारा विजयी बनाया था । तथा और देखिये—

सं अहं एषां राष्ट्रं स्यामि सं ओजो वीर्यं१ बलम् । वृश्चामि शत्रूणां बाहून् अनेन हविषाहम् ॥ २ ॥

५ अहं एषां राष्ट्रं संस्यामि— मैं पुरोहित होकर इनका राष्ट्र सब प्रकारसे तेजस्वी बनाता हूं । इस राष्ट्रमें

तेजस्वी ज्ञान फैलाकर उन प्रजाजनोंका उत्साह बढाता हूं और संपूर्ण राष्ट्रको मैं उत्तम तेजस्वी बनाता हूं !

६ अहं एषां ओजः वीर्यं बलं संस्यामि— मैं इन प्रजाजनोंका शारीरिक सामर्थ्य, पराक्रम करनेका वीर्य और मनका बल बढाता हूं। जिससे इस राष्ट्रभरमें सर्वत्र नव-चैतन्य उत्पन्न हुआ ऐसा दीखेगा।

७ अहं शत्रूणां बाहून् वृश्चामि—मैं शत्रुओंके बाहुओंको ही काटता हूं। शत्रुओंके बाहु कुछ भी प्रभावशाली न हों, ऐसा अपने राष्ट्रका सामर्थ्य मैं बढाता हूं। अपने राष्ट्रकी शक्ति शत्रुके राष्ट्रकी शक्तिसे अधिक प्रभावी बना देता हूं।

८ अहं अनेन हविषा (एतत् सर्वं करोमि)— मैं इस हविके यज्ञसे यह सब करता हूं। हविके समर्पणसे यज्ञ होता है। इस हविसे यह यज्ञ करके मैं यह प्रभाव यहां उत्पन्न करता हूं।

राष्ट्रका शिक्षा मंत्री पुरोहित होता था। उसके कार्यके लिये धनराशि नियुक्त होती थी। उस धनराशीका ज्ञान प्रचारके कार्यमें समर्पण करना उस शिक्षामंत्रीका कार्य था। उस धनराशीरूप हविके समर्पणसे वह ज्ञान प्रसार करता था और उस ज्ञानसे वह प्रजाजनोंका उत्साह बढाता था और उस राष्ट्रका क्षात्रतेज वह प्रभावी बनाता था।

नीचैः पद्यन्तां अधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्। क्षिणामि ब्रह्मणा अमित्रान् उन्नयामि स्वान् अहम् ॥ ३॥

९ (अमित्राः) नीचैः पद्यन्ताम्- शत्रु नीचे गिर जांय;

१० (अमित्राः) अधरे भवन्तु – शत्रु अवनत हों, पराजित हों, बलमें शत्रु क्षीण हों।

११ ये (अमित्राः) नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्– जो शत्रु हमारे राष्ट्रके ज्ञानी और धनीपर सैन्य भेजकर उनको कष्ट देते रहेंगे, वे सब क्षीण बल होकर नीचे गिरें।

१२ अहं ब्रह्मणा अमित्रान् क्षिणामि- मैं ज्ञानका प्रचार अपने राष्ट्रमें करके उस ज्ञानसे अपने राष्ट्रके लोगोंका उत्साह बढाकर, अपने राष्ट्रके शत्रुओंका क्षय करता हूं।

१३ अहं ब्रह्मणा स्वान् उन्नयामि- मैं ज्ञानके प्रचारसे अपने राष्ट्रके प्रजाजनोंकी उन्नति करता हूं।

ज्ञानके प्रचारसे ही यह सब हो सकता है। राष्ट्रमें ज्ञान प्रसार करना पुरोहितोंका कार्य है। पर वह ज्ञान ऐसा हो कि जिससे ब्राह्मणोंके युवक ज्ञानी बने, क्षत्रियोंके तरुण शूर वीर और बलवान् बने, वैश्योंके युवक व्यापार व्यवहारमें कुशल बनें, शूद्रोंके युवक उत्तम कारीगर हों और वन्य जातियोंके तरुण वन रक्षणादि कार्य उत्तम रीतिसे करनेमें समर्थ हों।

तीक्ष्णीयांसः परशोः अग्नेः तीक्ष्णतरा उत। इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषां अस्मि पुरोहितः ॥ ४ ॥

१४ येषां अहं पुरोहितः अस्मि- जिनका मैं पुरोहित हूं, जिनका मैं शिक्षणमंत्री हूं उनकी मैं उन्नति इस तरह करता हूं।

१५ (तेषां शस्त्रसंग्रामाः) परशोः तीक्ष्णीयांसः- उनके शस्त्रअस्त्र फरशीसे भी तीक्ष्ण बनाता हूं।

१६ उत (तेषां शस्त्रसंभाराः) अग्नेः तीक्ष्णतराः- और उनके शस्त्रसंभार अग्निसे भी अधिक तीक्ष्ण बनाता हूं तथा—

१७ (तेषां शस्त्रसंभाराः) इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसः- इन्द्रके वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण उनके शस्त्रसंभार मैं बनाता हूं, जिनका मैं पुरोहित होता हूं।

राजपुरोहितकी महत्त्वाकांक्षा यहां पाठक देखें। राष्ट्रके शिक्षामंत्री राष्ट्रमें कैसा नवचैतन्य लाता है यह देखने योग्य है। तथा—

एषां अहं आयुधा संस्यामि एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि। एषां क्षत्रं अजरं अस्तु जिष्णु एषां चित्तं विश्वे अवन्तु देवाः ॥ ५ ॥

१८ अहं एषां आयुधा संस्यामि- मैं पुरोहित इस राष्ट्रके आयुधोंको तीक्ष्ण बनाता हूं। शत्रुराष्ट्रके आयुधोंसे हमारे राष्ट्रके आयुध अधिक तीक्ष्ण तथा अधिक प्रभावी रहें।

१९ एषां राष्ट्रं सुवीरं (कृत्वा) अहं वर्धयामि- इनका राष्ट्र उत्तम वीरोंसे युक्त करके मैं बढाता हूं। मेरी सुशिक्षासे इस राष्ट्रमें, जिनका कि मैं पुरोहित हूं, शूर वीर उत्साही बढेंगे और उनके प्रयत्नसे इस राष्ट्रका उत्कर्ष होगा।

२० एषां क्षत्रं अजरं जिष्णु अस्तु- इनका क्षात्रतेज अक्षय हो, इनके क्षात्रतेजमें कभी न्यूनता न हो और वह जय प्राप्त करनेवाला हो। इनकी वीरता बढती ही जायगी। ये यश कमाते ही रहेंगे।

२१ विश्वेदेवाः एषां चित्तं अवन्तु- सब देव इनके चित्तकी सुरक्षा करें। सब देव इनके सहायक हों।

उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनानि उद् वीराणां जयतां एतु घोषः। पृथक् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम्। देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥ ६॥

२२ हे (मघवन्) ! वाजिनानि उद्धर्षन्ताम् – हे इन्द्र ! सेनाएं हर्षित हों। सैनिकोंमें कभी सुस्ती या उत्साह हीनता न आ जाय।

२३ जयतां वीराणां घोषः उदेतु– विजय प्राप्त करते हुए वीरोंका शब्दघोष ऊपर उठे, अर्थात् हमारे वीर विजय प्राप्त करके आ जांय और उनका जयजयकारका घोष चारों ओर आकाशमें भर जाय।

२४ केतुमन्तः उलुलयः घोषाः पृथक् उदीरताम्– ध्वज लेकर हमला करनेवाले हमारे विजयी वीरोंके शब्दोंका घोष पृथक् पृथक् आकाशमें ऊपर उठता रहे। जिससे हमारे वीरोंके उत्साहमय आक्रमणका सबको पता लगे।

२५ इन्द्रज्येष्ठा मरुतः देवाः सेनया यन्तु– इन्द्र जिनका प्रमुख सेनापति है वे मरुत् वीर हमारी सेनाके साथ चलें। 'मरुत्' वीर वे हैं, कि जो (मर्+उत्) मरने तक उठकर लडते हैं। 'इन्द्र' वह है कि जो (इन्+द) शत्रुओंका विदारण करता है। 'देव' वे हैं कि जो विजयका उत्साह धारण करते हैं। हमारी सेनामें ऐसे वीर हों।

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः।
तीक्ष्णेषवोऽवलधन्वनो हतोग्रायुधा
अबलानुग्रबाहवः ॥ ७ ॥

२६ हे नर ! प्र इत, जयत– हे नेता वीरो, आगे बढो और विजय प्राप्त करो। जो आगे उत्साहसे बढेगा वही विजय प्राप्त करेगा।

२७ वः बाहवः उग्राः सन्तु– आपके बाहु शौर्य, वीर्य, धैर्यसे युक्त हों, इससे तुम सब विजयी हो जाओगे।

२८ तीक्ष्णेषवः अवलधन्वनः हत– तुम्हारे बाण तीक्ष्ण हों, तुम्हारे शस्त्रोंसे शत्रुके धनुष्यादि युद्ध साधन अत्यंत निर्बल हों। तुम्हारे शस्त्र शत्रुके शस्त्रोंसे अधिक तीक्ष्ण हैं। अतः तुम शत्रुका वध करो। शत्रुका नाश करो।

२९ उग्र-बाहवः उग्रायुधाः ! अवलान् हत– हे उग्र बाहुवालों और प्रखर आयुधोंवाले वीरो ! तुम अपने शत्रुको मारो, काटो क्योंकि इनके शस्त्रास्त्र कमजोर हैं। तुम्हारे शस्त्र शत्रुके शस्त्रास्त्रोंसे अधिक प्रभावी हैं।

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येषां वरं वरं मामीषां
मोचि कश्चन ॥ ८ ॥

३० हे ब्रह्मसंशिते शरव्ये ! अवसृष्टा परापत— हे ज्ञानसे आधक तेजस्वी बने शस्त्र ! तू हमारे वीरों द्वारा छोडा जानेपर शत्रुपर जा गिर और शत्रुका नाश कर।

३१ अमित्रान् जय— शत्रुओंको जीत लो।

३२ प्र पद्यस्व— विशेष वेगसे शत्रुसेनामें घुस जा।

३३ एषां वरं वरं जहि— इन शत्रुओंके जो श्रेष्ठ श्रेष्ठ वीर हों उनको मार डाल। शत्रुके मुख्य प्रमुख वीर मर गये तो शत्रुका पराभव शीघ्र हो जाता है।

३४ अमीषां कश्चन मा मोचि— इनमेंसे किसीको न छोड अर्थात् सब शत्रुओंको मार डाल और अपनी उत्तम विजय हो ऐसा कर।

इस संपूर्ण सूक्तके मननसे पता लग सकता है, कि पुरोहितके आधीन राष्ट्रकी रक्षण व्यवस्था थी। वे कीले, दुर्ग, वन आदिके रक्षण कार्यकी देखभाल करते थे और राष्ट्रके रक्षकोंको शिस्तमें रखना, उनके शस्त्रास्त्र शत्रुके शस्त्रास्त्रोंसे अधिक कार्यक्षम रखना, तथा अपने वीरोंका उत्साह अधिक रहेगा ऐसा ज्ञान अपने राष्ट्रमें फैलाना आदि वे ही पुरोहित करते थे। वे ब्राह्मण रहनेके कारण वे ज्ञानसंपन्न रहते थे और ऋषि कालमें ब्राह्मणके घर विद्यापीठ ही होते थे और उनके विद्यापीठमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके लडके पढते थे। क्षत्रियोंको क्षात्रियोचित शिक्षा वहां मिलती थी। श्री दाशरथी राम, लक्ष्मण तथा श्रीकृष्ण, बलराम आदिकी शिक्षा इन गुरुकुलोंमें ही हुई थी। इस तरह योग्य रीतिसे राष्ट्रके रक्षक इन विद्यापीठोंमें तैयार होते थे।

नगरोंकी रचना, नगरोंके कीले, कीलेमें पांच या सात दिवारें, दिवारोंमें अन्दर प्रवेश करनेके द्वार, द्वारोंपर रक्षक, घरोंके रक्षक, गलियोंके रक्षक, वनोंके और अरण्योंके रक्षक, नदियोंके उतारोंपर रक्षक ऐसे नगरों और वनोंमें चारों ओर उत्तम रीतिसे रक्षणका कार्य होता था। इसलिये सर्वत्र सुरक्षा रहती थी।

रक्षकोंके पास उत्तम शस्त्र-अस्त्र रहते थे। शत्रुके आयुधोंसे अपने वीरोंके आयुध अच्छे तीक्ष्ण रखे जाते थे और अपने शस्त्रास्त्रोंका प्रभावी प्रदर्शन भी किया जाता था।

स्फोटक गोलक भी रहते थे जिनको 'उदार' कहते थे। जिनके सात प्रकार थे। इनकी स्फोटकता भी विशेष रहती थी और ये स्फोट करके शत्रुको दिखाये भी जाते थे।

इस तरह वैदिक आदेशानुसार राष्ट्रकी संरक्षण व्यवस्था थी। इसका विचार पाठक करें।